तपोमूर्ति बाहुबली

तपोमूर्ति बाहुबली

कमलावती जैन

डा. राजेन्द्र जैन द्वारा प्रकाशित

मूल्य : रु. 5.00

प्रथम संस्करण : 1981

डा. राजेन्द्र जैन द्वारा प्रकाशित

प्राप्ति स्थान : B-5/31, सफदरजंग एन्क्लेव, नयी दिल्ली

मुद्रक : सुरुचि प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

स्वर्गीय पूज्य नानाजी

व

उनकी स्वर्गीय बेटी, मेरी 'भाबो' माँ को

समर्पित

प्रस्तुति

श्रीमती कमला जैन का नाटक मैंने पढ़ा है। यह नाटक इस अर्थ में अप्रतिम है कि लेखिका ने यद्यपि कथा की परम्परागत रूपरेखा को अपनाकर नाटक को उसी पर आधारित किया है। तथ्य से अधिक कथ्य को रेखांकित किया गया है। कार्यकारण सम्बन्ध की शृंखला को साधकर ऋषभदेव भरत, बाहुबली, ब्राह्मी, सुन्दरी के चरित्रों के मानसिक बिम्ब उभारे गये हैं। अलौकिक चमत्कार की बाहरी सत्ता का वर्णन है। जो कुछ है अंतरंग ज्ञान और दर्शन के विकास और विश्लेषण पर टिका है। प्रबुद्ध पुरुषों द्वारा कथानक के नाटकीय क्रम की तात्विक व्यवस्था, भरत-बाहुबली के युद्ध की झाँकी के लिए विवरणवृत्त की रेडियोपरक कमेण्ट्री शैली, मनोगत भावों की व्याख्या करनेवाले स्वगत-कथन आदि अनेक शिल्पगत आयाम नये हैं। बाहुबली कथा का सम्पूर्ण तात्विक निरूपण ही इस कृति की विशेषता है। नाटकीयता भी सुरक्षित है किन्तु साहित्यिकता से अधिक वैचारिकता प्रधान है।

—लक्ष्मीचन्द्र जैन
डायरेक्टर
भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली

प्राक्कथन

इस नाटक में मैंने भगवान बाहुबली के जीवन के दार्शनिक, सामाजिक और सौन्दर्य-मय महत्त्व को उजागर करने का कोमल भावना से अथक प्रयास किया है। उनके व्यक्तित्व में आत्मस्वतन्त्रता का मूल्य पूर्णरूपेण साकार था। उन्हें किसी भी प्रकार की 'इच्छा', 'कामना', या 'अभिलाषा' की पूर्ति की खोज नहीं थी, न भौतिक और न आध्यात्मिक। किसी के लिए भी लालसा का कोई भी रूप इस लोक में या परलोक में बन्धन का द्योतक है जो अपनी पूर्ति के लिए, व्यक्ति के जीवन पर घोर रूप से छा जाता है। उन्होंने स्वयं को समस्त आकांक्षाओं से विलग कर, ऐसे अद्वितीय समभाव की प्राप्ति की कि उनके चारों ओर का वाता-वरण और प्राणी उस प्रभावना से विमुग्ध, विस्मित था। "इच्छा निरोधः तपः" का मन्त्र उन्हें सहज स्पर्श करता था।

श्रवणबेलगोल स्थित भगवान बाहुबली की मूर्ति का रचनास्वरूप, भगवान की उस मुक्त अनुभूति को व्यक्त करता है, जो इन्द्रियातीत है। कुछ दिन पहले जब मैं इस भव्य मूर्ति के दर्शन को श्रवणबेलगोल आई, तो प्रतिमा की अनन्य शान्त, गम्भीर मुद्रा ने मुझे इतना मुझे इतना प्रभावित किया कि मैंने उसी समय आत्मा-नुभूति के आधार पर एक नाटक लिखने का संकल्प ले लिया। मैं बहन कुन्था जैन की अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने मेरी अनुभूति को नाटक रूप में देने की इच्छा को प्रेमपूर्ण प्रोत्साहित किया। मैं सुजाता, पुष्पा और राजीव गर्ग के प्रति, उनके अनेकों सुझाव और सहायता के लिए आभारी हूँ। अन्त में मैं, डा. शिखर चन्द जैन का धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने पुस्तक के सम्पादन व प्रकाशन में सहायता दी।

मैं विशेष रूप से भारतीय ज्ञानपीठ के श्री लक्ष्मी चन्द्र जैन के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने नाटक को पढ़ा और सहृदयतापूर्वक, नाटक की विधा और विषय-वस्तु पर अपनी आलोचना-संगत सम्मति व्यक्त की।

—कमलावती जैन

तपोमूर्ति बाहुबली

पहला दृश्य

मंच विवरण—

[मंच के दो तल हैं। एक ऊपर एक नीचे।

ऊंचे वाले तल पर बाहुबली की प्रतिमा है। नीचे तल पर बाईं ओर एक छोटा मन्दिर और बड़ा चबूतरा है। तल से तीन सीढ़ी ऊँचा। और दाईं ओर ऊँचे तल पर जाने के लिये सीढ़ियाँ हैं। जहाँ से नर-नारी ऊपर की ओर भगवान के दर्शनों को जा रहे हैं।

कुछ लोग मन्दिर के आँगन में बैठे हैं वे थके हैं और सामान सहित हैं। नर-नारी अपनी वेश-भूषा के माध्यम से समस्त भारत के प्रदेशों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। यात्री गाते जाते हैं।

"वे गुरु मेरे उर बसो जे भव जलधि जहाज,
आप तिरे पर तार हैं
ऐसे श्री ऋषि राज।
पँच महाव्रत आदरें पाँचों सुमति समेत
तीन गुपत्ति पाले सदा अजर-अमर पद हेतु" इत्यादि।

बाईं ओर से एक पण्डित का प्रवेश]

पण्डित : (स्वगत) यह कैसा मनोरम व हृदयग्राही दृश्य है। भगवान बाहुबली के प्रति जनता की श्रद्धा व उत्साह का और उस कलात्मक चमत्कार के प्रति भी जो 1000 वर्ष बीते बाहु-बली की विशाल पाषाण प्रतिमा में अंकित कर दिया गया था।

'एक अनुपम विरक्त प्रशान्त मुद्रा के रूप में'।

[दूसरी ओर से एक शोध विद्यार्थी का प्रवेश]

विद्यार्थी : महानुभाव मैं आप ही की ओर जा रहा था। बाहुबली की विशाल प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक होने जा रहा है। इस अवसर पर लाखों रुपये व्यय होंगे, कितना दूध, दही, घी इत्यादि पदार्थ प्रतिमा पर ढार दिये जायेंगे। लोगों के पास खाने को तो है नहीं और यहाँ पर ऐसा निरर्थक दुरुपयोग? इसका क्या लाभ ?

उस पर नर-नारियों की भीड़ का तो कुछ अन्त ही नहीं। वह धनहीन हैं, गरीब हैं। पर ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी दीन अवस्था से बचने के लिए अपनी धनहीन व दुखी अवस्था को दृष्टि से ओझल कर सकें। अपने को धोखा देने के लिए ही आये हैं! स्वयं को भ्रम में रखने का यह उपाय क्यों ?

[पण्डित विद्यार्थी को बैठने को संकेत करता है]

पण्डित : सुनो! मेरे प्रिय बन्धु! ये समुदाय जो भक्तिवश आ पहुँचा है श्रवण बेल-गोला के दर्शनों की अभिलाषा, अपनी हार्दिक इच्छा पूर्ति के अभिप्राय से, वे धनहीन अवश्य हैं, परन्तु ध्यानहीन नहीं हैं। गरीब व्यक्ति सामान्यत: प्रत्यक्ष रूप से प्रवीण व तर्क-वितर्की न होते हुए भी सहज रूप से विचारशील व युक्तिसंगत होते हैं व अन्दर से उत्पन्न तर्क-वितर्क का समाधान लिये रहते हैं।

वे अपना धन लुटाने नहीं आये हैं और न ही जीवन

की वास्तविकता से भाग रहे हैं। वे भगवान में व अपने में समानता स्थापित करने आये हैं। समझो कि वे इस थोड़े से समय के लिये वे दरिद्र व गरीब नहीं अपितु समाज के प्रवीण विचारक हैं। इनकी शक्ति पर आधारित है जन समुदाय का साम्य समाज। वे विनम्र हैं बौद्धिक हैं पर दम्भ से परे हैं। दम्भ ही बाधक होता है निर्मल विचारों एवं विशुद्ध ज्ञान दर्शन में।

विद्यार्थी : यह कैसी उलटी बात कह रहे हैं कि हम बुद्धिवादी दम्भ व मान से ग्रसित हैं।

पण्डित : प्रिय बन्धु ! ऐसा ही है पाण्डित्य का मान। तुम केवल इन व्यक्तियों की धनहीन अवस्था, मामूली वस्त्र, धूल से भरे ऊपरी रूप को देखते हो विचारों व चरित्र की शक्ति को नहीं।

विद्यार्थी : हाँ ! तो आप कह रहे थे कि ये लोग आये हैं अपने व भगवान में तादात्म्य स्थापित करने, सो किस तरह ?

पण्डित : इस तरह की भगवान इच्छारहित, परिग्रह रहित, नग्न परमयोगी है; इस दृष्टि से ऊपरी समानता है उनमें। भगवान समदृष्टि हैं उनमें राग-द्वेष नहीं, छोटे-बड़े का भेद नहीं, इसी प्रकार ये सरल सहज मानव हैं। ये जन-समुदाय भी अल्पपरिग्रही और सांसारिक कामना की मायामयी बढ़ती हुई इच्छाओं से दूर। इस दृष्टि से उनमें व भगवान में एक घनिष्ठता व समानता का नाता स्थापित होता है।

[बाईं ओर से चुपके से मन्दिर के पीछे से एक कन्या छात्रा का प्रवेश, मन्दिर की दीवार का सहारा लेकर बैठती है। थकी मालूम होती है]

विद्यार्थी : आपने तो मुझे चक्कर में डाल दिया। ये सब गोल-मोल उत्तर मुझे सन्तुष्ट नहीं करते हैं—मैं तो इतना जानता हूँ कि इस समय जनता को जनता के लिए लड़ना चाहिए, न कि भावना में बहकर अपनी शक्ति और समय को खोना।

पण्डित : तुम्हारी विचारधारा के अनुसार जनता की परिभाषा क्या

है ? और क्या परिभाषा है व्यक्ति की ? जो जनता की एक मुख्य इकाई है। और क्या परिभाषा है व्यक्ति के व्यक्तित्व व उसकी आत्म-शक्ति की ?

विद्यार्थी : इसके बारे में मैं अधिक नहीं जानता। इतना ही जानता हूँ कि सामाजिक व राजनीतिक क्रान्ति लानी ही होगी किसी भी शक्ति के प्रयोग से।

पण्डित : तो फिर मैं तुम्हें उस आत्म-शक्ति के दर्शन कराता हूँ जो गर्भित है व्यक्ति व उसके व्यक्तित्व में, उसके चरित्र व विचारों में, इस शक्ति के आधार पर ही हो सकती है वास्तविक क्रान्ति व स्वाभाविक व्यक्तित्व का निर्माण, बिना आत्म-शक्ति और व्यक्तित्व के विकास की अनुभूति के क्रान्ति और स्वाधीनता के स्वप्न व्यर्थ हैं।

विद्यार्थी : यदि आपका ऐसा अधिकार इस तथ्य पर है, तो कराइये दर्शन उस स्वतन्त्र आत्म-शक्ति व क्रान्ति के, जिसके आधार पर व्यक्ति सुख-शान्ति से रह सके।

पण्डित : मैं तुम्हें आत्म-शक्ति से उत्पन्न उस उदार का दर्शन कराता हूँ बाहुबली के चरित्र से जो जीता जागता उदाहरण है इस शक्ति के।

[भगवान बाहुबली का छायाचित्र, फिर भगवान आदिनाथ की मूर्ति की छाया]

देखो ! यह है भगवान बाहुबली के पूज्य पिता ऋषभदेव जो आदि युग की सभ्यता के प्रथम मनु थे। उनकी स्तुति में उनके प्रति प्रणाम करता हूँ।

"आदि पुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार।
परम धुरंधर परम गुरु, नमों आदि अवतार ।।"

[पण्डितजी का ध्यान कन्या छात्रा पर पड़ता है।]

पण्डित : आप ?

कन्या छात्रा : एक अनुपम, आनन्दमयी, प्रशान्त, सम्यक् प्रतिमा का दर्शन कर लौट रही हूँ।

पण्डित : आप भी देखिये।

कन्या छात्रा : अवश्य ही आत्म-शक्ति का पान करूँगी !

(पर्दा गिरता है)

दूसरा दृश्य

[महाराज ऋषभ एक ऊँची शिला पर विराजमान हैं। एक विचारक की मुद्रा में स्थित हैं। उन पर प्रकाश इस प्रकार पड़े कि पीछे के परदे पर एक बड़ी छाया विचारक मुद्रा में दिखाई देती रहे।

अन्तर्मन में होते द्वन्द्वों को दर्शाता वाद्यनिनाद।

शनैः-शनैः यह नाद बन्द हो जाता है और महाराज ऋषभ थके पाँव, विचार मग्न धीरे-धीरे ऊपर से नीचे मंच पर आते हैं।]

[स्वगत भाषण]

महाराज ऋषभ : एक विचित्र व दुर्गम उलझन में फँसा हूँ। दिन-रात उस समस्या पर ही विचार करता हूँ। मैंने व पूर्व कुलकरों ने लोगों को केवल सामाजिक व्यवस्था ही सिखाई कि किस प्रकार मनुष्य असि, मसि, कृषि, आदि सुविधाओं का प्रयोग कर कुटुम्ब व कुल का पालन-पोषण करे, परन्तु धर्म व मोक्ष का मार्ग नहीं बताया जो वास्तविक स्थायी शान्ति व आनन्द देने वाला है।

हम लोग भूमि को कर्मभूमि में परिवर्तन करने में उत्तीर्ण हुए हैं, पर सुख व आनन्द देने में नहीं, योगभूमि में

सुख व चैन था, अब तो संघर्ष का उदय है। मनुष्य असि, मसि, कृषि आदि विद्याएँ सीख गया है और उसका प्रयोग स्वच्छन्द रूप से करना उसके लिए स्वाभाविक ही है। मेरे मन में द्वन्द्व यह है कि इन विद्याओं को मानव के हाथ में स्वच्छन्द न छोड़ इनको धार्मिक व आध्यात्मिक अनुशासन से बाँधना चाहिए था। जो मनुष्य को विचारशील व विवेकी बनाती हैं, सत्-असत् ये जो भेद है वह बताती हैं। द्रव्यों व तत्त्व का ज्ञान देतीं—जो सम्यक्दर्शन व सम्यक् ज्ञान के उदय होने में सहायक होतीं। इस प्रकार मनुष्य क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि कषायों से मुक्त हो, सुखी, व आनन्दित होता।

अर्थ और काम में वृद्धि व प्रगति के साथ-साथ क्रोधादि कषायों की भी पुष्टि होगी और हिंसा का साम्राज्य हो जायेगा। करुणा व सहिष्णुता जो धर्म का मूल हैं लुप्त हो जायेंगी!

अब मैं धर्म व मोक्ष की व्यवस्था करूंगा, मनुष्यमात्र को उसकी भी शिक्षा दूंगा, जिससे वह भेद-विज्ञानी बनेगा, जो उसके अर्थ व काम की उन्हीं प्रकृतियों को ग्रहण करेगा, जो धर्म व मोक्ष मार्ग में सहायक हों, और कर्मभूमि में भी मनुष्य सुखी व आनन्दित रह सकेगा।

इसके लिए मैं घोर चिन्तन व तप करूंगा। अपने को बन्धनों से मुक्त कर औरों को मुक्ति मार्ग दर्शाऊँगा।

इस कार्य के लिए मुझे राज्य, वैभव त्याग कर बन के शान्त वातावरण में ध्यान करना होगा। सो मैं राज्य कार्य राजकुमारों को सौंप ससस्त परिग्रहों से मुक्त हो निग्रन्थ अवस्था में विहार करूंगा।

[दाईं ओर से दो प्रबुद्ध पुरुषों—अन्तर्मन के सचेत रक्षक, पथ-प्रदर्शक—का प्रवेश, जो महाराज के परममित्र भी हैं।]

प्रथम प्रबुद्ध पुरुष : अहो मित्र महाराज ऋषभदेव! आज भी सदा की तरह

विचारों में डूबे हो, खोये-खोये से दिख रहे हो। अब कौन-सी अस्तित्व की उलझन में उलझे हैं आप ?

दूसरा प्रबुद्ध पुरुष : विचारों में मग्न ऋषभदेव ने सुना नहीं कि हमने क्या कहा ?

प्रथम प्र० पु० : महाराज ऋषभ वास्तव में करुणानिधान हैं, दूरदर्शी सत्-असत् के ज्ञायक, परम शक्तिमान् तपस्वी कर्म योगी हैं। वे काल व क्षेत्र की परिणमन शक्ति यथार्थ के दर्शी हैं। जो मानव की हिंसक प्रवृत्तियाँ वर्तमानकाल में अदृश्य हैं वे काल—जिसमें सदा परिवर्तन रहता है—के प्रभाव से भविष्य में हृदय-विदीर्ण करने वाली हिंसा का रूप धारण कर लेंगी।

दूसरा प्र० पु० : यानी वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसा होना सम्भव तो है ही। यह निश्चय से जानो कि हिंसक भावनाओं का जन्म मनुष्य की अपनी भयभीत अवस्था का प्रतीक है। जो विचारशीलता के अभाव में पनपता है। जहाँ विचार वहाँ भय कहाँ ? हिंसा कहाँ ? मनुष्य निर्भय है, आनन्दित है व परिपूर्ण है।

प्रथम प्र० पु० : किन्तु इस तथ्य को जन-मानस ने अभी पहचाना नहीं और यही चिन्ता ऋषभ महाराज को व्याकुल कर रही है, हमको ऐसा प्रतीत है।

महाराज जानते हैं कि संसार की सभी उपलब्धियाँ क्षणिक हैं, आज हैं कल नहीं और उनके उपार्जन में व एकत्रित करने में हिंसा होती है। उससे चित्त में खिन्नता भी आती है। पर उपाय क्या ?

दूसरा प्र० पु० : उपाय ही की तो चिन्ता महाराज कर रहे हैं। हो सकता है भगवान इस तथ्य के दृष्टा हों और वह ज्ञान मनुष्य को दें जो उसे निर्भय बनाये।

प्रथम प्र० पु० : सो तो मैं भी अनुभव कर रहा हूँ। निश्चय ही व्यावहारिक तपस्या द्वारा ऋषभ उस ज्ञान को प्राप्त करेंगे जो व्यावहारिक व आत्मिक दोनों सुखों व आनन्द का स्रोत होगा और जीवन की सब समस्याओं का समाधान प्राप्त होगा।

[ऋषभ महाराज का ध्यान टूटता है, वे दोनों को संकेत देते हैं]

ऋषभ : अहो मित्रो ! धर्म वृद्धि हो ! हमने यह निश्चय कर लिया है कि राजकुमारों पर राज का भार सौंप, एकान्त स्थान में रह कुछ ध्यान करें और ज्ञान प्राप्त करें, आत्मा व परमात्मा का वास्तविक स्वरूप जानें ।

प्रथम प्र० पु० : महाराज ! आप तो स्वभाव से ही दार्शनिक, ज्ञानी व सम्यक् हैं । आपको राज्य और परिवार छोड़ तपस्या करने की क्या आवश्यकता ?

दूसरा प्र० पु० : अभी राजकुमारों को तो आप से बहुत कुछ सीखना व जानना है ।

प्रथम प्र० पु० : ऐसा न हो कि युवा अवस्था में वैभव पाकर उनमें क्रोध, मान आदि कषाय उत्तेजित हो जायें और वे उनके वशीभूत हो कुछ अनर्थ कर बैठें ।

दूसरा प्र० पु० : ऐसी अनेक शंकायें मेरे मन में भी उत्पन्न हो रही हैं । अनर्थ होना बहुत सम्भव है ।

ऋषभ : आप दोनों परम दार्शनिक व ज्ञानी हैं । हमारी अनुपस्थिति में राजकुमारों को सत्य व अहिंसा के मार्ग से डिगते देख आप उनका मार्ग प्रशस्त करें । यह उत्तरदायित्व हम आप दोनों को सौंपेंगे । आप तो भरत व बाहुबली के चरित्र से भलीभांति परिचित हैं ।

प्रथम प्र० पु० : आप के दोनों पुत्र यद्यपि परम पराक्रमी हैं परन्तु स्वभावानुसार विपरीत हैं । एक प्रभुत्व कामी और अविचारक है तो दूसरा नम्र व गंभीर, एक अहम् बुद्धि और महत्वाकांक्षी है तो दूसरा आत्म निरीक्षक व सन्तुष्ट ।

दूसरा प्र० पु० : ऐसी पारस्परिक प्रतिकूलता व विपरीत दृष्टिकोणों से उत्तेजित हो ऐसा न हो कि कभी उनमें परस्पर युद्ध हो जाये ?

ऋषभ : मित्रो—परन्तु मुझे विश्वास है कि आप सम दृष्टि, ज्ञानी व प्रबुद्ध होते हुए—यदि ऐसी परिस्थिति हुई भी, तो आप उन्हें उस महा हिंसा से रोक सकेंगे सत्य का मार्ग सुझाकर व दिखाकर । वह सत्य जो प्रत्येक परिस्थिति की परिवर्तनशीलता को दर्शाता है और जिसमें निहित है प्रत्येक परिस्थिति का अनेक दृष्टिकोणों से निरीक्षित सत्य ।

ऐसे स्यादवाद की शिक्षा के द्वारा आप अवश्य ही उनको बचा सकेंगे उस प्रलयकारी हिंसक-क्रिया से इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं।

अब तो मैं निश्चिन्त हूँ और स्वतन्त्र भी !

(पर्दा गिरता है)

तीसरा दृश्य

[राज्य तिलक की व्यवस्था इस तरह है—
राज्य सभा लगी है। महाराज ऋषभ दोनों पुत्रों व दोनों पुत्रियों सहित मंच के ऊपरी भाग में विराजमान हैं। महाराज बहुत गम्भीर हैं।

पृष्ठ स्वर में—शहनाई, मृदंग व मँजीरों आदि का नाद जो चारों दिशाओं को गुंजित कर रहा है, मंच पर नर-नारी मँगल गान करते व नाचते हुए चले जा रहे हैं।]

मँगल गान : चिरन्जीव हो हमारे युवराज, मंगलमय! उनका जीवन मंगल मय हो राज्य महान, सर्व प्रजा भी मंगल मय हो, सुख शांति का साम्राज्य हो!! चिरंजीव!!

[मंच के नीचे तल में दोनों प्रबुद्ध पुरुषों का प्रवेश]

प्रथम प्र० पु० : महाराज की दो पुत्रियां भी तो हैं? ब्राह्मी व सुन्दरी। ब्राह्मी ठहरी ब्राह्मी लिपी जो महाकाव्यों, शास्त्रों व

साहित्य आदि की रचना को सम्भव बनाती है और ब्राह्मी के माध्यम से ही दार्शनिकों व ज्ञानियों के विचार चिर स्थायी हुए हैं। जिनके पठन व मनन से जीव मात्र आत्मज्ञान का अमृत पान कर सुखी व आनंदित होता है। और उसकी आत्मीयता व व्यक्तित्व जागृत होता है।

दूसरा प्र० पु० : और दूसरी सुन्दरी पुत्री को क्या समझा जाय ?

प्रथम प्र० पु० : सुन्दरी उसने गणित शास्त्र को जन्म दिया है। जो समस्त भूमण्डल के ज्ञान का आधार हैं। सुन्दरी सृष्टि की सुन्दरता की द्योतक है। सर्व ज्योतिष शास्त्र जो असंख्य तारागणों, नक्षत्रों की गति, शक्ति व विभूति का ज्ञान कराता है गणित ज्ञान पर ही आधारित है और ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से ही भूत, भविष्यत व वर्तमान तीनों कालों का ज्ञान होना सम्भव है।

दूसरा प्र० पु० : तब तो सत्य ही महाराज की दोनों पुत्रियां ज्ञानदात्री तेजस्विनी हैं, जो उनकी चरित्र-परायणता व नम्रता आदि से दीपित हैं।

प्रथम प्र० पु० : और यह भी जानो कि महाराज ऋषभ ने दोनों पुत्रियों को समान ज्ञानों की शिक्षा दी है। जिसके द्वारा समस्त सृष्टि का दर्शन व ज्ञान होता है।

दूसरा प्र० पु० : मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि महाराज ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र वीर हैं, रण कला में पारंगत, तेजस्वी व ओजस्वी हैं परंतु वैराग्य में अपूर्व हैं। अतः क्रोध, मान आदि कषायों से विमुक्त नहीं हैं।

प्रथम प्र० पु० : और दूसरी ओर अनुज पुत्र बाहुबली जो कामदेव हैं, अति सुन्दर, बलिष्ठ, न्यायमार्गी। अपनी व औरों की स्वतन्त्रता के प्रचारक, वेसद् गुणों की महामूर्ति, विचारक व दार्शनिक हैं। जिनमें क्रोध, मान आदि कषायों का प्रकोप लेश मात्र भी नहीं है। उनके मुखमण्डल पर तेज, ओज व अनोखी शान्ति दीप्तिमान है।

दूसरा प्र० पु० : ये ही गुण तो उनके प्रजातन्त्र का आधार होंगे। जैसा कि हमें भविष्य में उनकी राज्य व्यवस्था में दिव्यमान होने की सम्भावना है।

[पहले ऋषभ, भरत जो ज्येष्ठ पुत्र हैं उनका राजतिलक करते हैं। उसको भारत का राज्य सौंपते हैं।—इसकी घोषणा पृष्ठ स्वर में होती है। "भरत की जय जय!" के नाद इत्यादि से वातावरण गूंज उठता है।]

घोषणा : (पार्श्व स्वर में) महाराज ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र, युवराज भरत जो परम पराक्रमी हैं, अनन्त प्रतिभाशाली हैं, रण-स्थल में सिंह समान प्रतिद्वंद्वियों के विजेयता हैं और विद्वान राजनीतिज्ञ हैं, ऐसे युवराज को महाराज राजतिलक करते हैं—भारत के महाराजधिराज भरत की जय!

[सभा में उपस्थित लोग]

समूह : महाराज भरत की जय! भारत की जय!!

[फिर बाहुबली अनुजपुत्र को राजतिलक करते हैं। उसको ओदनपुर का राज्य सौंपते हैं। इसकी घोषणा पृष्ठ स्वर में होती है व 'बाहुबली की जय-जय' व शंखों इत्यादि की ध्वनि से आकाश गूंजने लगता है।]

घोषणा : अब महाराज ऋषभ! न्यायशील स्वतन्त्रता के पुजारी अनुजपुत्र बाहुबली को युवराज का तिलक करते हैं, व उन्हें पोदनपुर का राज्यभार सौंपते हैं।—महाराज बाहुबली की जय!

ज.म समूह : पोदनपुर के महाराज बाहुबली की जय!

[दोनों पुत्रों को राज्य दे—महाराजा ऋषभ बड़े गंभीर भाव से मंच पर ही वस्त्राभूषण आदि का परित्याग करते हैं। प्रकाश केवल उन पर ही है। वे धीरे-धीरे मंच के पीछे की ओर गमन

करते हैं। सब राज्य सभा में उपस्थित लोग उन पर दृष्टि डालते हैं।]

[इसी समय प्रबुद्ध पुरुष मंच पर आगे आते हैं और कहते हैं]

प्र० प्र० पुरुष : यह कैसा हृदय विदारक दृश्य था। महाराजा का समस्त वैभव त्याग निरग्रन्थ हो वन की ओर प्रस्थान करने का ! पार्श्व से गायन स्वर :

["रंग महल में पोठते कोमल सेज बिछाय,
ते पश्चिम निशि भूमि में सोंवे सँवर काय"]

दूसरा प्र० पुरुष : सत्य की खोज में कि मैं कौन हूँ ? मनुष्य क्या है ? मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है आदि ? अनेक प्रश्नों के उत्तर पाने के अभिप्राय से करुणानिधान महाराज ऋषभ घोर तप करेंगे।

पार्श्व से गायन स्वर :

["शीत पड़े कपि मद बाले, दाभे सब बन राय,
ताल तरँगिन के तटे ठाढे ध्यान लगाय।"]

प्र० प्र० पुरुष : असंख्य विपत्तियों और विषमताओं को सहेंगे।

पार्श्व से गायन स्वर :

['पूर्व भोग न चिन्तवें, आगम बाँछा भी नाँहि,
चहुँगति के दुःख से डरे, सूरत लगी शिव माँहि"]

दूसरा प्र० पुरुष : ऐसे हैं महाराज ! महाराज की दृष्टि केवल मुक्ति मार्ग जो अनंत आनंद मार्ग है, उसको खोजने में लगी है। उनकी लगन है खोज में इस शाश्वत, अपरिवर्तनशील सत्य की जो

समय या काल व क्षेत्र की सीमा से सीमित नहीं है।

पार्श्व से गायन स्वर :

["गज चढ़ि चलते गर्व सों सेना सजि चतुरंग।
निरख निरख पग वे धरें पाले करुणा अंग"]

प्र० प्र० पुरुष : करुणा विधान महाराज के लिये समस्त भूमण्डल में, जीव मात्र में भूत, भविष्यत, वर्तमान तीनों कालों में कोई विषमता नहीं, कोई भिन्नता नहीं, इसलिए निश्चय से कोई द्वन्द्व भी नहीं। मनुष्य अपनी राग-द्वेष आदि भावनाओं से वशीभूत हो शाश्वत सत्य में विषमता, भिन्नता व द्वन्द्व उत्पन्न करता है।

[जब यह स्तुति कर रहे हैं। उतने समय में महाराज छाया ध्यानारूढ़ कायोत्सर्ग अवस्था में खड़े दिखाई देते हैं।

उधर बाहुबली धीरे-धीरे ऊपर से मंच के बिलकुल बीच आकर कहते हैं।]

[एक भाषण]

बाहुबली : मैं नम्रता, क्षमा परंतु दृढ़ता से राज्य की व्यवस्था करूंगा। जहाँ सब में सामान्य भाव होगा, वास्तविक प्रजातन्त्र की स्थापना करूंगा—जहाँ मनुष्य के लिए निःस्वार्थी होकर रहना होगा—समानता होगी, स्वतन्त्रता होगी परंतु चरित्र दृढ़ता की कड़ी शिक्षा दे प्रजा की सम्पत्ति व प्रतिष्ठा की रक्षा करूंगा।

पारस्परिक प्रेम-बीज बोऊँगा, न्याय व भेद विज्ञान के जल से सींचूंगा। जिससे स्वतन्त्रता-रूपी फल उत्पन्न होगा जो समाज के लिए अत्यन्त पौष्टिक होगा।

यद्यपि हिंसा का पूर्ण अभाव होगा। ऐसा स्वतन्त्र व स्वस्थ समाज ही राज्य की व्यवस्था चलाने में उत्तीर्ण हो

पाये—मैं ऐसी शिक्षा दूंगा उनको। मैं तो एक विचारक राजा रहूँ, ऐसी मेरी इच्छा है। जिसको राज्य के वैभव, प्रतिष्ठा से लगाव नहीं, एक त्यागी वैरागी की तरह।

[शनैः शनैः प्रकाश मन्द हो जाता है। मंच पर अन्धकार छा जाता है]

(पर्दा गिरता है)

चौथा दृश्य

[राज महल के उद्यान में]

[स्वतः कथन]

भरत : राज्याभिषेक के समय मुझे एक अनोखी अनिर्वचनीय अनुभूति हुई—जैसे कि मैं समुद्र की ऊँची आकाश की घूमती लहरों पर तैर रहा हूँ। ऐसा लगा कि सूर्य के प्रकाश को मैंने अपने में गर्भित कर लिया है। और उसमें और मुझमें समानता है।

जैसे जै जै कार की ध्वनि चारों दिशाओं को गूंजाती कानों में पड़ी, मन की तन्त्री के नाद बज उठे, मन अत्यन्त सन्तुष्ट, प्रफुल्लित व आनंदित हुआ और शरीर रोमांचित व पुलकित। नेत्र अश्रु से गीले हो गए।

[भरत कुछ ठहरते हैं पर्दे के पीछे से, प्रजा के उत्साह का गान होता है :
"जय जय भरतेश महान्, परम विक्रमी व शक्तिमान्,

हमारे रक्षक हैं, देते हैं अभय दान, ऐसे प्रभु को शत् शत् प्रणाम।"]

[कुछ नर-नारी, रंगबिरंगे कपड़े पहिने मंगल गान करते मंच से गुजर जाते हैं।]

भरत : मेरी प्रजा को मेरे प्रति कितनी अगाध श्रद्धा व प्रेम है यह उनके उत्साह से प्रगट है। रंग बिरंगे वस्त्र पहिने नर-नारियों के झुंड मंगल गान करने जा रहे हैं। यह समस्त प्रजा मेरी है। मैं इनका एक मात्र सहारा हूँ, प्रभु हूँ, महाराजाधिराज हूँ। इनमें पूज्यनीय हूँ, इनका भाग्य विधाता हूँ।

मैं सच में ही शक्ति मात्र हूँ। मैंने गज पर चढ़, अपनी असंख्यात चतुरंगी सेना का साक्षात्कार किया है।

कितना शुभ व सन्तोष-जनक है यह अभिषेक। अनेक राजा मेरे अधीन हैं, मुझे नमस्कार करते हैं। मेरे से नीचा स्थान ग्रहण करते हैं। अनेक योद्धा व चतुर मन्त्री मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा करते हैं। मेरे जैसा वीर व पराक्रमी कहाँ है संसार भर में ? मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ, प्रमुख हूँ।

[महामन्त्री व सेनापति का प्रवेश]

महामन्त्री : परम् तेजस्वी महाराज की जय ! आपकी आयुद्धशाला में रत्न चक्र उत्पन्न हुआ है। जो आप के चक्रवर्ती होने का चिन्ह है।

भरत : चक्रवर्ती ! ···क्या ?

(स्वगत) अब मैं महा प्रतापी चक्रवर्ती भी हो जाऊँगा। संसार के कोने-कोने में मेरा साम्राज्य स्थापित होगा। मैं सम्राट होऊँगा—राजाओं का राजा। अमर हो जाऊँगा। व्यक्ति आते-जाते हैं, परन्तु यश व कीर्ति सदैव प्रतिष्ठित है। अमर होगा मेरा नाम !

महामन्त्री : अब आप अपनी चतुरंगी सेना के साथ दिग्विजय के लिये प्रस्थान करना होगा। सभी राजाओं को परास्त कर उनको अपने अधीन करना आपके लिए अनिवार्य है। आप उनके सम्राट होंगे और वे आपको श्रृद्धा पूर्वक प्रणाम करेंगे।

रत्न चक्र आगे-आगे चलेगा। बहुधाकर राजा स्वयंमेव ही आपकी शरण में आते जायेंगे। परन्तु जो राजा ऐसा नहीं करेंगे उनको आप परास्त कर अपने अधीन करेंगे।

सेनापति : हमारी सेना युद्ध कला में निपुण व वीर है। सो निश्चय ही हम विजयी होंगे। और आप सबके शीश मुकुट महाराजाधिराज-चक्रवर्ती पद ग्रहण कर अनंत कीर्ति मान व यशस्वी होंगे।

पृष्ठ-भूमि में स्वर

[जै जै कार ध्वनि, भरत के चक्रवर्ती होने की घोषणा, व विजयी-संकेतक शंखादि नादों का गुंजन]

घोषणा : "भरत सम्राट, चक्रवर्ती, दिग्विजयी, महावीर आयोध्या में पधार रहे हैं समस्त प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त कर व चारों दिशाओं में अपना साम्राज्य स्थापित कर।"

[मंच पर रंग-बिरंगे वस्त्र पहिने नर नारी उत्साह से नाचते व मंगल गान करते जाते हैं]

मंगल गान : "आया बसन्त सखी बिरहा का अंत सखी वन-वन में छायी बहार।
झूम रहे कुंजन में साजन-सजनियाँ बहियाँ गले में डाल।
हिल-मिल मनाओ त्योहार
मिलन कर हिल मिल मनाओ त्योहार।"

[एकाएक सन्नाटा छा जाता है। घोषणा होती है पीछे से, पृष्ठ भूमि में स्वर—यह क्या रत्न चक्र रुक गया ?

ऐसा कौन सा राजा बाकी है जो महाराज का विरोधी है और उनकी शरण में नहीं है ?]

[मंच पर भरत, यज्ञ में तीव्र सेनापति का प्रवेश— तीनों अति गम्भीर हैं सोचते हैं]

महामन्त्री : महाराज ! आपके अनुज बाहुबली जो पोदनपुर के राजा हैं अति न्यायशाली वीर और धीर हैं। जिन्होंने राज्य व्यवस्था अनोखे ढंग से प्रजातन्त्र के आदर्श पर स्थापित की है। वह ही हो सकते हैं आपके प्रतिद्वन्द्वी। वे स्वतन्त्र हैं, स्वतन्त्रता के पुजारी हैं, विचारशील हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः उनको ही आपकी अधीनता स्वीकृत न हो।

भरत : बाहुबली तो मेरे अपने सहोदर भाई हैं, सो स्वाधीनता व आधीनता का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

महामन्त्री : महाराज की जय ! महाराज राजनीति के अनुसार यह आवश्यक है कि वे आपके चक्रवर्ती पद का होना स्वीकार करें और आपको शीश नवाएँ। केवल अनुज होने के नाते नहीं परन्तु इस नाते से भी कि वे पोदनपुर के स्वतन्त्र राजा नहीं हैं व पोदनपुर आपके साम्राज्य का भाग। अतएव यह आवश्यक है कि वहाँ का राजा आपको शीश नवाए, आप का आधिक्य स्वीकार करे।

भरत : ऐसा हो इसमें मुझे बहुत सन्देह है। बाहुबली केवल बली ही नहीं अपितु स्वतन्त्र प्रकृति के भी हैं। सम्भवतः वे आधिक्य स्वीकार नहीं करेंगे।

महामन्त्री : महाराज ! यदि ऐसा हुआ तो आपको राजनीति के अनुसार अपने अनुज से युद्ध करना होगा। उनके दम्भ को परास्त करना होगा।

भरत : महामन्त्री आप तो विचारशील हैं। हमको तनिक से राज्य के लिए सहोदर से लड़ने की शिक्षा देते संकोच नहीं करते। और आप यह भी अच्छी प्रकार जानते हैं कि हमें युद्ध के नाम से भी घृणा हो गई है। युद्ध ! जो यहाँ हिंसा का कारण है जिसमें अनेक योद्धा मृत्यु के घाट उतरते हैं।

जिनकी माताओं, बहिनों व पत्नियों के रुदन से चारों दिशाओं में हाहाकार मच जाता है। नहीं ! अब हम से यह नहीं होगा।

हम पर्याप्त रक्त-पात देख चुके हैं अपनी दिग्विजय यात्रा में, उसका स्मरण भी हमें कँपा देता है। ऐसी निरर्थक हिंसा ! अब कभी नहीं !

महामन्त्री : महाराज ! आप चक्रवर्ती हैं आपका कर्तव्य बनता है प्रति-द्वन्द्वियों को परास्त करना और उन पर प्रभुत्व स्थापित करना। ऐसा विचार कर हमने एक चतुर राजदूत को भेजा है बाहुबली के पास। वह आपकी सार्वभौमिकता व प्रभुत्व के विषय में हमारा दृष्टिकोण उन्हें सुझाकर, उनका उत्तर हमें शीघ्र ही सूचित करेगा।

भरत : तथास्तु !

[राज दूत का मंच पर प्रवेश]

राजदूत : यद्यपि मैंने चतुराई से महाराज भरत का सन्देश शक्तिमान बाहुबली के समक्ष उपस्थित किया परन्तु वे चक्रवर्ती भरत को केवल ज्येष्ठ भाई के नाते ही नमस्कार करेंगे अन्यथा नहीं। क्या दोनों भाइयों में पृथ्वी के टुकड़े के लिए युद्ध होगा ? जिसमें असंख्य सैनिकों व योद्धाओं का संहार होगा ? यहाँ हिंसा होगी ?

[वेग से प्रस्थान]

[पृष्ठ भूमि में स्वर—रण भेरी का नाद जो चारों दिशाओं को गूँजा रहा है]

[प्रकाश प्रबुद्ध पुरुषों के मंच के दूसरे भाग पर पड़ता है।]

पहला प्रबुद्ध पुरुष : सुनो ! यह भयानकनाद, दोनों ओर के योद्धाओं ने चक्रव्यूह

रचा है। भरत की असंख्यात भाड़े के सैनिकों की चतुरंगी सेना का सामना करने को तैयार है, छोटी सी बाहुबली की स्वतन्त्रता प्रिय सेना, जो अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखने के अभिप्राय से इस भयानक युद्ध की ज्वाला में कूदने को तत्पर है।

दूसरा प्र० पु० : भैया ! सत्य प्रश्न तो यहाँ यह है कि विजय किसकी होगी ! धर्म की या अर्थ की !

पहला प्र० पु० : और प्रश्न यह भी है कि किस प्रकार योद्धाओं की बलि रोकी जाये ?

दूसरा प्र० पु० : मित्र ! मैं ऐसा विचार करता हूँ, कि हम दोनों भाइयों को यह सुझाव दें कि वास्तव में लड़ाई दोनों की पारस्पिरिक बात है। सो अपने पारस्परिक पराक्रम व वीरता को स्थापित करें। दृष्टि युद्ध, जल युद्ध व मल्ल युद्ध के माध्यम से। जो विजयी सिद्ध हो वही चक्रवर्ती पद का अधिकारी हो।

पहला प्र० पु० : बुद्ध मित्र ! यह तो एक अनुपम व अति सुन्दर विचार है। सो यदि दोनों पक्षों को ऐसा युद्ध स्वीकृत हुआ तो यह युद्ध निश्चय से अनुपम अनन्य व अहिंसक होगा।

दूसरा प्र० पु० : इसका और भी लाभ होगा। दोनों भाइयों को अपनी व्यक्तिगत महानता, शूर वीरता व त्रुटियों का ज्ञान हो जायेगा। अपनी-अपनी त्रुटियों के दर्शन व ज्ञान से उनका मानसिक विकास होगा। अहम ! बुद्धि का विनाश होगा।

पहला प्र० पु० : और एक अनुपम काया पलट होगा। दृष्टि स्वयं में ही परिमित न रहकर विस्तृत होगी। समस्त संसार और जीव मात्र की ओर उनके कल्याण के लिए। करुणा, नम्रता आदि सद्भावों का जन्म होगा। तत्व ज्ञान जानने के प्रति रुचि उत्पन्न होगी।

दूसरा प्र० पु० : कि क्या सत् है व क्या असत् ?

पहला प्र० पु० : परन्तु मुझे शंका यह होती है कि यदि वे हमारे सुझाव को स्वीकार न करें, तो फिर क्या होगा ?

दूसरा प्र० पु० : बन्धु सुनो ! दोनों भाई विचारशील हैं। अहिंसक युद्ध के सुझाव को सुनकर निश्चय ही उससे प्रभावित हो स्वीकार करेंगे।

[धीरे-धीरे दोनों का दाईं ओर प्रस्थान]

(पर्दा गिरता है।)

पाँचवां दृश्य

[रण-स्थल में
बिलकुल मंच पर आगे बाईं ओर से भाष्यकार
का प्रवेश
[भाष्यकार घोषणा करता है]

"यह युद्ध अहिंसक युद्ध होगा। न ही इसमें शस्त्र आदि का प्रयोग नहीं होगा और योद्धाओं का रक्त बहेगा। परन्तु युद्ध का अभिप्राय पूरा हो जायेगा। जो पक्ष अधिक पराक्रमी सिद्ध होगा वही चक्रवर्ती घोषित किया जायेगा।"

[मंच के पिछले भाग में दाईं ओर से मंगल ध्वनि
व मंगल गान करती हुई टोलियों का प्रवेश।
जिनमें सब प्रकार के व्यक्ति स्त्री, पुरुष, साधु
इत्यादि सब ही सम्मलित हैं, गा रहे हैं
टोलियाँ दाईं ओर से बाईं ओर को चली जाती
हैं।]

"मन को रंगा जोगी साँचे रंग में क्या है कपड़ा रंगाने से।
काम, क्रोध, मद, लोभ न छोड़ो, इसी भ्रम के भ्रम में डोलो
पाप कमावे धर्म गँवावे, सब कुछ भूल-भूलाने में।
मन को रंगा…"

[फिर से भाष्यकार घोषणा करता है]

"यह युद्ध दो महा-योद्धाओं के बीच होगा जो विचारशील हैं, अहिंसा के पुजारी और जो भगवान ऋषभ के पुत्र भी हैं। धर्म प्रेमी व पराक्रमी महाराज भरत व महाराज बाहुबली के बीच। इनमें पारस्परिक दृष्टि युद्ध, जल युद्ध व मल्ल युद्ध होगा। जो विजयी होगा वही चक्रवर्ती पद का अधिकारी होगा।"

[युद्ध मंच पर दिखाया जायेगा—मूक अभिनय व कर मुद्राओं व नाच के माध्यम से। तदनुकूल संगीत पर्दे के पीछे से होगा। दृष्टियुद्ध व जल युद्ध मंच के निचले भाग में होगा। और मल्ल युद्ध, बाहुबली का भरत को दोनों हाथों में अधर उठा लेना व उनको नीचे न पटककर सिंहासन पर विराजमान करना इत्यादि मंच के ऊपर के स्तर पर दिखाया जायेगा। वहां पर ही भरत उत्तेजित हो बाहुबली पर चक्र प्रहार करेंगे।

भाष्यकार धारावाही आँखों देखी व्याख्या करेगा, युद्ध व युद्ध स्थल की, और इसलिए उसने कुछ ऊँचाई पर ऐसा स्थान ग्रहण किया है जहाँ से वह युद्ध व युद्ध स्थल अच्छी प्रकार दृष्टि-गोचर कर सके।

पर्दे के पीछे से गम्भीर लय व स्वर में, युद्ध के मूक अभिनय अनुकूल संगीत होगा। उपस्थित व्यक्ति ओह! आह व जयकारों के माध्यम से दोनों पक्षों की जीत व हार प्रगट करेंगे।]

भाष्यकार : देखो! यह एक अदभुत अहिंसक युद्ध है सो इसके युद्ध स्थल की रचना भी अपनी-सी अनन्य है। सैनिकों व

शस्त्रार्थ का सम्पूर्ण प्रभाव है। यहाँ उपस्थित हैं दोनों पक्षों की प्रजा के नर-नारी, शासक व पदाधिकारी। जिनमें चिन्ता नहीं रोष नहीं बाकी प्रफुल्लित हैं मुख मंडल। देखने की चाह है एक अदभुत दृश्य की। आपमें चुपके-चुपके वार्तालाप कर रहे हैं। दूसरी ओर रणस्थल सुसज्जित है पताकाओं व आम्रपात्तों की बंदनवारों से।

[व्याख्या में अन्तराल]

भाष्यकार : वह देखो ! दोनों महा शक्तिशालीशी नवान योद्धा आ पहुँचे रणस्थल में। जिनके मुख मण्डल पर दीप्यमान है या मण्डल की सी छबि, ऐसा सौन्दर्य जो देवताओं के मन को मुग्ध कर ले।

[यहाँ पर फिर व्याख्या कुछ समय के लिए नहीं है परन्तु मंच पर उपस्थित पात्र हिलडुल रहे हैं]

भाष्यकार : पहले दृष्टि युद्ध होगा। दोनों योद्धाओं में होड़ होगी दृष्टि को स्थिर रखने की। जो पलक न झपके इस युद्ध में वही उत्तीर्ण होगा, विजयी होगा।

[भरत व बाहुबली दृष्टि, युद्ध कर रहे हैं। नृत्य मुद्राओं द्वारा प्रेषित-तदनुकूल संगीत चल रहा है।]

भाष्यकार : कैसा हृदय ग्राहक दृश्य है, दृष्टि-युद्ध का। दोनों योद्धाओं ने दृष्टि को स्थिर करने का निर्णय कर लिया है। अरे ! महाराज भरत के नेत्र थक गये हैं, एक बूंद जल-भर आया है उनके नेत्रों में। यह क्या उनकी पलकें झपक गयीं ? हार हो गयी ?

दर्शक : बाहूबली की जय ! बाहूबली की जय

[चारों दिशायें गूंज उठीं जय-जयकार से]

भाष्यकार : अब जल युद्ध होने जा रहा है। जो तरण विद्या में उत्तीर्ण होगा, जल को ऊँचा उछाल सकेगा व जल के आघात को सह सकेगा, सफल तैराक और जलकला में पारंगत होगा, और इस प्रकार अपनी शक्ति को स्थापित करेगा वही विजयी होगा।

जल युद्ध की तैयारी है। देखो ! तैरने में तो दोनों भाई बराबर ही उतरे हैं। पर यह क्या कि भरत जल ऊँचे से ऊँचा उछाल रहे हैं। परन्तु बाहुबली का वक्ष-स्थल भर गीला नहीं हो रहा ? और जब बाहुबली जल उछालते हैं तो भरत के न केवल चक्षु व मस्तक गीले हो जाते हैं, बल्कि वह पूरी तरह छींटों में डूबे उनके आघात से व्याकुल हैं।

दर्शकों के द्वारा : "बाहुबली की जय ! शक्तिशाली बाहुबली की जय !!

[जयकारों से चारों दिशाएँ गूंज उठती हैं]

भाष्यकार : वास्तव में बाहुबली भुजबली सिद्ध हुए हैं। अब ऊँचे स्थल पर मल्ल युद्ध होगा दोनों भाइयों के बीच। देखो अब निर्णय है ? मैं जरा ऊँचे पर खड़ा होता हूँ ?

[भरत व बाहुबली ऊपरी स्थल पर चढ़ते हैं, दर्शक उनकी ओर दृष्टि उठाते हैं। दोनों में मल्ल युद्ध होता है]

भाष्यकार : अब युद्ध का अन्तिम भाग है। बाहुबली व भरत में युद्ध हो रहा है। यह क्या बाहुबली ने पैंतरा पलटा और भरत को दोनों हाथों में अधर उठा लिया। (कुछ समय के लिए चुप हो जाता है।)

[दर्शकों की जयध्वनि से गूंज जाता है भूमण्डल]

भाष्यकार : देखो ! बाहुबली अपने बड़े भाई के प्रति विनीत भावपूर्वक आसन पर विराज रहे हैं व नमस्कार कर रहे हैं। विनय गुण व नम्रता बाहुबली का स्वाभाविक स्वभाव है। वही उनकी महान शक्ति है।

[फिर से बाहुबली की जयकार होती है। उप-स्थिति सभी व्यक्ति इस नम्रता से भाव-विभोर हो गये हैं।]

भाष्यकार : हाय ! यह क्या भरत ने अपनी अहम् व आक्रमणकारी प्रवृत्तियों से उत्तेजित हो बाहुबली पर चक्र चला दिया ?

[दर्शकों में चारों ओर हा-हाकार मच गया]

दर्शक : हाय ! हाय !!

[कुछ ठहरकर भाष्यकार]

भाष्यकार : वह देखो और आनन्द मनाओ। चक्र बाहुबली के शीश की तीन परिक्रमा दे शीश बिना छुए ही वापिस आ गया है भरत के पास इसका क्या कारण ? (जय-जयकार की ध्वनि)

[कुछ ठहरकर]

मैं समझा चक्र अपने सहोदरों का संहार नहीं करता है। बाहुबली निश्चय से ही आत्म-शक्तिमान व पराक्रमी सिद्ध हुए हैं। उन्होंने अपने बड़े भाई भरत को सिंहासन पर विराज मानकर चक्रवर्ती पद भरत को सौंप दिया है।

वह देखो ! बाहुबली प्रति खिन्न, दुखी व निराश अवस्था में नीचे जा रहे हैं।

[भक्ति व श्रद्धावश दर्शक उनके चरणों में पुष्प चढ़ाते हैं, बहुत धीमा-धीमा उदासी दर्शाता संगीत होना अति आवश्यक है। बाहुबली नीचे मंच पर बिलकुल सामने आते हैं
प्रकाश केवल बाहुबली पर, पीछे अन्धकार है।]

बाहुबली : (स्व-कथन) क्या संसार इसी का नाम है कि वीरता व विनय का उत्तर उत्तेजित आत्म दम्भ परिपूरित प्रहार से मिले? क्या सांसारिक वैभव, पृथ्वी व राज्यादि के प्रति लालसायें व इच्छायें मनुष्य को विचारहीन बना देती हैं? क्या मनुष्य को इतना बन्दी बना लेती हैं कि उनके फल-स्वरूप वह अपनी आत्मीयता व व्यक्तित्व को भी खो बैठता है?

यह रहस्य क्या है? व सत्य क्या है? इसे जानने के निमित्त मैं एकान्त स्थान पर तप करूँगा, चिन्तन करूँगा। सब प्रकार के द्वन्द्व व आधीनता से मुक्त हो; निराश्रित हो; स्वाधीन व स्वतन्त्र होऊंगा। मैं अपने अनन्त व अखण्ड आनन्द में विचरूँगा।

पृष्ठ स्वर में

[चत्तारि सरणं पव्वजामि, परहंते सरणं पव्वजामि, सिद्धे सरणं पव्वजामि, साहुसरणं, पव्वजामि, केवली बण्णोता धर्मे सरणं पव्वजामि।
धीरे-धीरे प्रकाश बाहुबली पर से हट जाता है

ऊपर मंच स्थल, पर, सिंहासन पर विराज-मान भरत अपने हाथों में मस्तक पकड़े बैठे हैं, चिन्ता व विचारों में खोये हैं अत्यधिक उदास हैं। प्रकाश केवल उन पर है। शोकजनक मंद संगीत पर्दे के पीछे से चल रहा है। वे थके पैर नीचे उतरते हैं।]

भरत : (स्वगत) अब तक मैं भ्रम में भरमता रहा ! प्रेम पान किया ही नहीं। यह क्या किया मैंने ? अनुज अपूर्व शक्ति-मान भ्राता, जो विजयी होने पर भी नम्र भाव से प्रणाम करे। उस पर चक्र प्रहार ! उनकी राजतन्त्र व्यवस्था से साक्षात प्रतीत होता है उनकी समदृष्टिता, विनम्रता। वे आत्मीयता के धनी हैं स्वतन्त्रता के प्रचारक हैं। उन पर अपने दम्भ से उत्तेजित हो चला दिया चक्र मैंने ! अहम् के घोर अन्धकार ने मुझे दृष्टि हीन बना दिया था। मैं अपने को महा यशस्वी चक्रवर्ती समझने लगा, जो समस्त संसार पर राज्य करेगा और उसको अपने आधीन रक्खेगा।

[फिर कुछ देर ठहरकर मंच पर व्याकुल हो घूमते हैं।]

ऐसा घोर अन्याय जीवों को आधीन रखने की इच्छा का। अपने को उनका प्रभु समझने का। निश्चय से सब प्राणी मुक्त हैं, बरावर हैं, छोटा बड़ा कोई नहीं। अपने कर्मानुसार संसार में भ्रमण कर रहे हैं। यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से मैं चक्रवर्ती हूं परन्तु निश्चय से सामान्य से भी निम्न व्यक्ति।

मेरा स्वयं को अत्यधिक शक्तिमान व सम्पतिमान समझना ही मान है। और यह मान ही हिंसक भावनाओं व हिंसक क्रियाओं का कारण है। मनुष्य के समस्त सम्बन्धों में मान ही विष रूप है।

[अति गम्भीरता से चक्षु मूंदकर]

अंतराल से उतरकर मुझे यह भास हो रहा है कि मैं केवल दृष्टा व ज्ञाता हूँ जो निश्चय ही मेरी आत्मा का स्वरूपहै। मेरी बाहरी क्रियाओं के प्रभाव में श्रेय लेना प्रतिबिम्बित करता है, मेरी अपनी घोर अज्ञानता को। मैं हूँ केवल आत्मा ! केवल दृष्टा ! केवल ज्ञाता !

[फिर ठहर कर]

वस्तुओं में परिणमन हो रहा है क्योंकि परिणमन होना उनका अपना स्वभाव ही है। मैं कौन हूँ जो उनमें परिणमन लाने का कारण होने का गर्व करूँ।

मैं व्यावहारिक रूप से चक्रवर्ती अवश्य हूं। और मेरे अनेक कर्तव्य भी हैं। यह कर्तव्य मैं अनासक्त से भाव से करूँगा। अब समता, क्षमता आदि सिद्धान्त ही मेरे पथ-प्रदर्शक होंगे।

अब मुझ में अगाध शान्ति, क्षमता व स्वतन्त्रता की अनोखी अनुभूति हो रही है। सांसारिक गुत्थियां सुलझ गई हैं। अब तो भगवान ऋषभ, जो पूज्यपिता भी हैं उनके दर्शनों की अभिलाषा है। वहाँ जा आत्मज्ञान का लाभ उठाऊँगा।

[धीरे-धीरे प्रकाश उन पर से हटता है
एक ओर से प्रबुद्ध पुरुषों का प्रवेश
प्रकाश उन पर]

प्र० प्र० पुरुष : यद्यपि दोनों भाइयों की खोज सत्य के प्रति है परन्तु खोज की प्रारम्भिक प्रेरणा भिन्न-भिन्न है और परिस्थियां भी भिन्न-भिन्न हैं। सो खोज का मार्ग भी भिन्न-भिन्न होना अनिवार्य है।

दोनों भाइयों ने इसलिए वास्तविकता और सत्य को पहचानने की अलग राहें पकड़ी हैं।

प्र० प्र० पुरुष : भरत ने आत्म ग्लानि से और बाहुबली ने संसार के प्रति ग्लानि से अभिभूत हो पग विपरीत दिशा को उठाये। भरत ने स्वयं की आलोचना, पश्चाताप, तर्क-वितर्क व आत्म-दर्शन का मार्ग अपनाया। उनके लिए अनिवार्य है कि आत्मज्ञान के साथ व्यावहारिक ज्ञान भी जागृत रहे। चक्रवर्ती होने के नाते उनको बाह्य क्रिया करनी ही होगी चतुरता व न्याय से।

प्र० प्र० पुरुष : इस लक्ष्य को पाने के हेतु उनको अपने आत्मीय बल, समता, क्षमता आदि समस्त गुणों को प्रशस्त करना होगा, जगाना होगा। इस प्रकार से भरत यद्यपि चक्रवर्ती हैं। परन्तु परम् सम्यक् योगी हैं—समस्त बन्धनों से मुक्त-जीवन मुक्ति की अवस्था में विचर रहे हैं।

दू० प्र० पुरुष : और भी ! आत्म ज्ञान व केवल ज्ञान ने आत्मग्लानि की जगह ली है। सब कुछ साक्षात है उनको।

प्र० प्र० पुरुष : वे केवल संसार से विरक्त नहीं हैं वरन अपने से भी विरक्त हो चुके हैं।

[पीछे से गान बहुत धीरे—"समता रमता दायक हो सब सिद्ध नमों सुख दायक हो !"]

(पर्दा गिरता है)

छठा दृश्य

[मंच के ऊपर के हिस्से में बाहुबली ध्यानस्थ खड़े हैं। त्वचाओं से शरीर। केवल शीर्ष दीखता है। चारों ओर प्रकृति, वृक्ष, फूल और हरे-भरे पौधों का अपूर्व दृश्य है। शान्तिमय वातावरण है।

गाँव के युवक युवतियाँ रंग-बिरंगी वेशभूषा में नाचते-गाते मंच पर आते हैं खूब मस्त हो नाचते हैं, गाते हैं।

उनके वस्त्रादि व हाव-भावों से विदित है उस स्थान की पौराणिक कथा का।]

सब सखियाँ, आआ गुइयाँ
बगिया में आई बहार
सब सखियाँ, हिल मिलियी
नाचें और गायें मल्हार।

गेंदा गुलाब देखो,
फूलों पे आब देखो
ओसों की बून्दों पे आया निखार।

पृथ्वी शृंगार
उड़ान देखो
तितली देखो
भौरों के गीतों की हो रही गुंजार।

[नाचना समाप्त होता है। सबका प्रस्थान। केवल दो युवतियां मंच पर रह जाती हैं।]

वीना : देखा ! नाचने में कैसा आनंद आया, प्रतीत होता था कि पग धरती पर नहीं बल्कि पानी पर तैर रहे हैं। मन की प्रफुल्लता का तो अंत ही नहीं।

मंजूषी : उस पर कोयल की कूक, शीतल मन्द पवन, चहुँ ओर हरा-भरा दृश्य।

वीना : ओरी मंजषी। तूने क्या एक अद्भुत व्यक्ति अवश्य देखा होगा ? देखने में तो सजीव पुरुष-सा दीखता है, परन्तु हिलता न डुलता है आँखें भी नहीं झपकता। सो ऐसा भासता है कि कहीं पत्थर की मूर्ति ही तो नहीं।

मन्जूषी : मुझे भी ऐसा ही भ्रम हुआ था। एक दिन मन नहीं माना। सोचा कि इस प्रतिमा के पैरों को छूकर देखा जाये।

वीना : तब क्या तूने छूकर देखा ?

मन्जूषी : छूने में तो शिला की तरह ठण्डे व कठोर हैं। परन्तु देखने में लगता है कि जीते-जागते मनुष्य ही हैं।

वीना : फिर तो यह मनुष्य ही है।

मन्जूषी : परन्तु महीनों से यहीं खड़ा है थका नहीं ! भूख-प्यास मिटाने आदि का क्या प्रबन्ध करता होगा ?

वीना : शायद इसको भूख लगती ही न हो।

मन्जूषी : ऐसा सम्भव है क्या ?

वीना : हमारी दादी ऐसे मनुष्यों की कहानियाँ हमें बचपन में सुनाया करती थी, जिनमें अपूर्व बल व शक्ति होती थी। वे हम लोगों जैसे नहीं होते। हम से एकदम भिन्न होते हैं।

मन्जूषी : परन्तु यह भी तो हो सकता है कि कहीं घर वालों से लड़-कर चला आया हो और किसी दुर्गम विचारों में उलझकर

भूल गया हो कि मैं भूखा हूँ, प्यासा हूँ या मेरे ऊपर लताएँ चढ़ गई हैं। बहुत सोचने की अवस्था में तो सर्द व गर्म ऋतुएँ आती हैं व चली जाती हैं, उनका पता भी नहीं चलता।

वीना : हमारी दादी यह भी कहती थी कि ऐसी अवस्था में मनुष्य का साँस अतिधीमा चलता है और रक्त-संचार व उष्णता भी कहने मात्र की रह जाती है। सारा शरीर यद्यपि ठण्डा व शिथिल-सा हो जाता है परन्तु कपाल में तीव्र गति व प्रकाश होता है और नेत्रों में तेज।

मन्जूषी : ऐसा है तो अवश्य ही यह कोई महा तपस्वी हैं। जिनमें यह सब लक्षण दीप्यमान् हैं। जो समदृष्टि व करुणा निधान हैं। तभी सर्पों व लताओं ने उनके शरीर को अपना क्रीड़ा स्थान बना लिया है। पक्षी उनके कन्धों की सवारी करते हैं। जंगली पशु उनके पैर चाटते व चूमते हैं।

वीना : हाँ, पशु-पक्षी बड़ी सुगमता से व स्वाभाविक रूप से मनुष्य की अन्तरंग भावनाओं व आत्मीयता को सूँघ लेते हैं व जान जाते हैं।

मन्जूषी : तब तो यही कारण है, इस तपोवन में शान्ति व आनन्द का।

वीना : और यही कारण है, हम यहाँ रहने वालों की अनन्य आनन्द अनुभूति का।

मन्जूषी : अब मैं समझी, इस वन के सौन्दर्य, शान्त व मन्द-मन्द सुगन्धित पवन का भेद। चलो चलें हम अपने साथियों को यह भेद बताएँ।

वीना : और फिर सब मिलकर इनकी आरती उतारें, स्तुति करें, पूजा करें।

मन्जूषी : मैं तो फूली नहीं समा रही, चल जल्दी कर।

[दोनों ऊपर चढ़ बाहुबली के चरणों में नमस्कार करती हैं।]

(प्रस्थान)

[सुन्दरी का प्रवेश]

सुन्दरी : मैं सुन्दरी हूँ ! सुन्दर सृष्टि व प्रकृति की द्योतक हूँ— सुन्दर, कोमल, सुगन्धित सजीव पुष्प हैं ! बता रहे हैं, मेरे अनुपम सौन्दर्य को। मेरे किसी अंश में भी विषमता नहीं है। मैं अपने में परिपूर्ण हूँ। इस कारण मैं समता की देवी हूँ। अर्थात् वह सम बिन्दु हूँ जहाँ से गणित शास्त्र की उत्पत्ति होती है, मैं गणित शास्त्र देवी हूँ।

गणित द्वारा ही समस्त ब्रह्माण्ड का ज्ञान होता है, अनन्तान्त तारांगगणों का, नक्षत्रों, सूर्य व चन्द्रमा का, उनकी गति का व भूत-भविष्यत्, वर्तमान् सभी कालों का। इस ज्योतिष शास्त्र को अपने में गर्भित करे हूँ। मुझे इसका पूर्ण ज्ञान है। इस दृष्टि से मैं सुन्दरी ऋषभ भगवान की पुत्री समस्त संसार की ज्ञाता हूँ।

[ब्राह्मी का प्रवेश]

ब्राह्मी : मैं ब्राह्मी हूं। भगवान ऋषभ की दूसरी पुत्री। मैंने ब्राह्मी लिपी को जन्म दिया है। जिसके आधार पर रचना होती है, महाकाव्यों, शास्त्रों, कविता व साहित्य की। इन्हीं से दीप्यमान है पूर्ण मनुष्य—उसकी प्रवृत्तियाँ, उसका समस्त ज्ञान व दर्शन, उसकी समता व आत्मीयता। समस्त सृष्टि का बोध मेरे ही माध्यम से होता है। मैं ज्ञान की भण्डार हूँ। सब वस्तुओं का ज्ञान मेरे में ही गर्भित है। उस दृष्टि से मैं ऋषभदेव की पुत्री दृष्टा, ज्ञाता समस्त शास्त्रों में पारंगत हूँ।

सुन्दरी : बहिन चलो चलें भइया के दर्शनों को जो दुर्गम तपस्या में कायोत्सर्ग मुद्रा मे, अविचल पर्वत की तरह विराजे हैं, इस सघन वन में।

(प्रस्थान)

[दोनों प्रबुद्ध पुरुषों का प्रवेश]

प्रथम प्र० पु० : भगवान की दोनों पुत्रियाँ निश्चय ही आत्मज्ञानी हैं। दोनों में अगाध प्रेम है, सदैव इकट्ठी रहती हैं। एक को आत्मज्ञान है तो दूसरी को प्रकृति, ज्ञान —प्रकृति में लगातार परिणमन का, उसको पूर्ण ज्ञान है और यह ज्ञान ही सत्य है।

दोनों मिलकर अपने व्यक्तित्व से समस्त सृष्टि को उसकी पूर्णता और समग्रता में प्रगट करती हैं। जिसमें संघर्ष नहीं विषमता नहीं समानता व शान्ति ही शान्ति है। और यों दोनों अपने-अपने में भी परिपूर्ण हैं।

दूसरा प्र० पु० : ऐसा ही है ! दोनों बहिनें एक सम्पूर्ण सम्मिश्रित शक्ति के सन्तुलन को प्रगट करती हैं। पहली वाली में प्रकृति, प्रकाश और सुन्दरता का समावेश है जो शाश्वत, समलयता और सकारणता संजोये है और दूसरी में साहित्य, संस्कृति, विकासशीलता और मानव की अनुभूतियों से अद्भुत आत्मिक समरसता का समावेश है।

वे एक दूसरे की पूरक भी हैं, इसीलिये उनका नाम है 'सुन्दरी' जो जन्म-जात गुणों से युक्त है और दूसरी है, 'ब्राह्मी लिपि' अर्थात् जो ब्रह्म में लिखी जा रही है, अपने विकास-चरणों की छाप लगाती।

प्रथम प्र० पु० : यह स्वाभाविक परिपूर्णता ही उनको प्रदान करती है असीम शक्ति, विचार शीलता, धीरता; सन्तोष व दूरदर्शता जो जागृत करता है, उनमें भेद-विज्ञान की अपूर्व दृष्टि।

दूसरा प्र० पु० : सो तो है ही —और भेद विज्ञान की अपूर्व दृष्टि ही आत्म उत्थान, केवल ज्ञान व मुक्ति का परम मार्ग है।

[विचारों में डूबे हुए भरत का प्रवेश]

भरत : मैं पूज्य पिता भगवान् ऋषभ के दर्शनों को गया था। दर्शन कर द्वन्द्वों के शान्त होने की अनुभूति हुई व आत्मिक आनन्द का अनुभव हुआ। भगवान् ऋषभ ने अपने केवल ज्ञान से

बताया कि महा तपस्वी बाहुबली को उलझन इस बात की है कि मैं पृथ्वी पर आधारित हूँ व आश्रित हूँ क्योंकि मैं उस पर खड़ा हूँ। अतः यह स्वतन्त्र मानव नहीं हूँ। उलझन उनको शूल की तरह अशान्त कर रही है और यह अशान्ति ही उनके केवल ज्ञान में बाधक है।

[दूसरी ओर से दोनों बहिनों का प्रवेश। दोनों के हाव-भाव से विदित है, उनकी स्वयं में आनन्दिता व स्वतन्त्रता। दोनों एक साथ बोलती हैं, उत्साह के साथ।]

दोनों एक साथ : हाँ! भरत भैया! आपको पूज्य पिताजी ने क्या बताया?

भरत : यह कि उनको पृथ्वी के आश्रित रहना शूल रहा है। क्योंकि वह सत्य ही समझते हैं कि पृथ्वी सदैव संघर्ष का कारण होती है।

ब्राह्मी : यह सोचना तो महा अज्ञानता है। एक तो पृथ्वी स्वयं में संघर्ष का कारण नहीं, वरन् व्यक्तियों के कषाय भाव जो पृथ्वी के प्रति लालसा रखते हैं, वह हैं, संघर्ष के कारण। दूसरा जब तक अघातिया कर्म है, तब तक शरीर रहेगा, और पृथ्वी पर ही निश्चय से आधारित रहेगा। इसमें आश्रित होने की बात नहीं है। जानना तो केवल यह है कि शरीर व पृथ्वी दोनों पुद्गल पदार्थ हैं, दोनों में समानता भी है, कौन किसके आधीन है, विचार करना ही मिथ्या है। और आत्मा द्रव्य जो भिन्न पदार्थ है जो केवल दृष्टा व ज्ञाता है, भासता अवश्य है कि वह शरीर के आश्रित है परन्तु ऐसा नहीं है।

सुन्दरी : ऐसा ही है! आत्मा द्रव्य निश्चय में सदैव ही मुक्त है, स्वतन्त्रता इसका मुख्य है। यह स्वतन्त्रता केवल सिद्ध अवस्था में ही दीप्यमान होती है, अन्यथा नहीं। जब तक वह सिद्ध अवस्था प्राप्त नहीं करता व चारों अघातिया कर्मों का क्षय नहीं करता शरीर में बसता है और ऐसा प्रतीत होता है कि जीव पृथ्वी आदि द्रव्यों के आधीन व आश्रित

है। पर वास्तविक रूप से ऐसा नहीं है।

भरत : प्रिय बहिनों ! आप आत्मबोधी हो ! आप ही बाहुबली को संबोधने में समर्थ हैं।

[दोनों उत्साह के साथ]

दोनों : चलो चलें उनके पास, कैसे दुर्गम तप में खड़े शारीरिक कठिनाइयाँ सहन कर रहे हैं। उन पर बड़ी दया आती है। चलो शीघ्र चलें।

[सब का प्रस्थान]

[दोनों प्रबुद्ध पुरुषों का प्रवेश]

प्रथम प्र० पु० : दोनों बहिनें अपूर्व नम्रता, करुणा व आत्मीयता की प्रतिमा हैं। यही उनकी महान शक्ति है। इस ही दृष्टि से जगत जननी हैं। मनुष्य मात्र की अहम्, पारस्परिक शत्रुता आदि प्रवृत्तियों को चुनौती दे सकती हैं। और उसको उसकी अहिंसा, मित्रता, समानता आदि सद्भावनाओं के प्रति अग्रसर कर, उनको अपने व्यक्तित्व से भिज्ञ करा सकती हैं।

दूसरा प्र० पु० : कि मैं एक व्यक्ति हूँ ! मेरे में ही गर्भित है मेरा व्यक्तित्व, मानवता, आत्मीयता और भाग्य ! मैं अपना स्वामी आप ही हूँ। स्वतन्त्र हूँ ! मुक्त हूँ।

[इस ही समय बहिनों ने लताएँ आदि बाहुबली के शरीर से हटा दी हैं और बाहुबली ने दो पग ऊपर से नीचे की ओर बढ़ाये हैं। नीचे उतर रहे हैं।]

[नगर के युवक, युवतियाँ आ पहुँची हैं आरती उतारने व पूजा करने। गाती है। आरती उतारती हैं।]

[यहाँ पूजा का रिकार्ड बजना चाहिए—या पूजा]

["सुरतन मुकुट रतन छवि करें,
अन्तर पाप तिमिर सब हरे,

जिन पद बदों मन बचकाय भव जल पतित उधारन साथ, द्रुत पारग इन्द्रादिक"

देव जाकि द्युति कीनी, कर देव शब्द मनोहर पूर्ण विशाल, तिस प्रभु की वरणों गुण माल"]

(पर्दा गिरता है)

सातवाँ दृश्य

[प्रथम दृश्य जैसा मंच—पंडित जी, पुरुष विद्यार्थी व कन्या छात्र वार्तालाप कर रहे हैं]

विद्यार्थी : पंडितजी आपने आत्मशक्तिमान बाहुबली के चरित्र के दर्शन कराये, इसके लिए मैं आपके प्रति आभारी हूँ। परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में जहाँ सम्पूर्ण सामाजिक व राजनीतिक क्रान्ति की आवश्यकता है जहाँ सामान्य जनता को कुछ धनी व्यक्ति अनुचित लाभ उठा रहे हैं, अपने स्वार्थ साधन करने के लिए, ऐसी परिस्थिति में आत्मशक्ति का स्थान क्या है ? मेरी समझ में नहीं आता। कम-से-कम मेरी समझ में तो नहीं आता ?

कन्या छात्रा : देखो भाई ! इस समय बल का प्रयोग—चाहे वह बल शारीरिक हो, चाहे वह बल वैज्ञानिक युद्ध शस्त्र के ज्ञान का हो, जिसको नष्ट करने की अपार शक्ति हो—जल उत्थान का मूल कारण समझ लिया गया है। जहाँ "शक्ति ही न्याय" ऐसा तथा माननीय है। परंतु ऐसे तथ्य वास्तव में किसी समय भी मानवता को प्रगति व वृद्धि की ओर अग्रसर करने में उत्तीर्ण नहीं हुए हैं। किसी भी देश की या समाज की आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था में क्रान्ति व

वृद्धि, इस तथ्य के आधार पर कुछ समय के लिए हो सकती है। परंतु वह वृद्धि स्थायी नहीं होगी। क्योंकि कुछ समय बीते, विजयी व्यक्ति जो शक्तिवान नहीं होते, वरन अहमी व आक्रमणकारी होते हैं, स्वयं ही सामान्य जन-समुदाय का अनुचित लाभ उठाना या शोषण करना प्रारंभ कर देते हैं। प्रगति स्वार्थपरता का रूप धारण कर लेती है। जिसमें युद्ध, संघर्ष, दुःख परतन्त्रता स्वाभाविक रूप से निहित होती है।

विद्यार्थी : आपका मतलब यह है कि क्रान्ति अनिवार्यतः होनी ही नहीं चाहिए ?

कन्या छात्रा : ऐसा तो मैं नहीं सोचती कि होनी ही नहीं चाहिए। परंतु इतना अवश्य जानती हूँ कि लड़ाई या क्रान्ति का आधार भिन्न होना चाहिए। "शक्ति ही न्याय" ऐसा तथ्य उलट दिया जाय "न्याय ही शक्ति" में, और ऐसा तथ्य अपनाया जाये। क्या आपने देखा कि किस प्रकार भरत जिनके लिए "शक्ति ही न्याय" था परास्त हुए बाहुबली की उसे शारीरिक शक्ति से जो वास्तव में उनके मानसिक गुणों की प्रबुद्धता से परिपूर्ण थी। उसी आधार पर दोनों में भिन्नता थी, कि बाहुबली न्यायवान व आत्म-शक्तिमान व्यक्ति थे।

मैं तो ऐसा जानती हूं, कि चाहे अहमी आक्रमणकारी हो, चाहे वह देश हो, चाहे समाज हो, चाहे दल हो, और चाहे व्यक्ति हो, जो दूसरों को अपने अधीन करने के तथ्य पर चलता है वह वास्तव में ही द्वन्द्व, प्रतिद्वन्द्वता व अशान्ति के बीज बोता है। जो जीवमात्र के जीवन को उत्थानित व सुखी बनाने की जगह उसे दुःख व अवनति की ओर खींचता है।

विद्यार्थी : क्या आप यह कहना चाह रही है कि क्रान्ति की व्यवस्था बल के ऊपर आधारित न हो ?

कन्या छात्रा : सो तो स्पष्ट ही है! क्रान्ति के ध्येय है : सुख, शान्ति, मानवता व आत्मीयता को स्थापित करना, वह तभी संभव

है जब हम आत्मशक्ति का विकास करें, तर्क-वितर्क व विचार शीलता से। वह आत्मशक्ति जिसका मूल है, अपनी व दूसरों की स्वतन्त्रता के तथ्य का आदर, अपनी व दूसरों की आवश्यकताओं, प्रेरणाओं इत्यादि भावनाओं को समझना। ऐसा प्रबुद्ध, शक्तिमान मार्ग ग्रहण कर ही संभवतः हम सार्थक वास्तविक व चिरस्थायी क्रान्ति लाने में समर्थ हों। जिसके ऊंचे से ऊँचा अधिकारी भी बाहुबली की भाँति प्रतिष्ठा व संपत्ति के प्रति निर्मोही व विरक्त हो और स्वयं में विशुद्ध विचारों व तर्क से संगत हो।

विद्यार्थी : यह तो आपने बड़ा सुंदर चित्र खींचा आत्मशक्ति का व शक्तिमान व्यक्ति का, जिसके द्वारा सम्भवतः हम इस समय क्रान्ति लाने में समर्थ हों। परंतु चिंता तो इस बात की भी है कि आगे भविष्य में क्या होगा ?

कन्या छात्रा : पंडितजी आप ही इस गम्भीर समस्या पर प्रकाश डाल हम को ज्ञान दान दीजिये।

पंडित जी : प्रिय बन्धु ! जिसको आप भविष्य कह रहे हैं क्या वह निश्चय से वर्तमान व भूतकाल से पृथक है ? या हम इसको पृथक केवल व्यावहारिक समझने की सुगमता के ध्येय से ऐसा कहते हैं ? क्या वर्तमान में भविष्य गर्भित नहीं है ? यदि हम ऐसा जानें कि वर्तमान ! भविष्य भी है ! तो हम वर्तमान का ही प्रत्यक्ष व स्पष्ट रूप जानने का प्रयत्न करेंगे।

वर्तमान काल में समस्त परिस्थितियों में निरंतर परिवर्तन आता रहता है। "उत्पाद्व्यय" तथ्यानुसार निरंतर परिवर्तन आयेगा ही ऐसा निश्चय है। परिस्थितियाँ चाहे सामाजिक हो, चाहे राष्ट्रीय व चाहे अन्तर्राष्ट्रीय उनकी निरन्तर परिवर्तनशीलता को तर्क ज्ञान द्वारा निरीक्षण करना ही उनके अस्तित्व को जानना है, उनका ज्ञान करना है। यह ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान होगा, भूत भविष्यत् व वर्तमान कालों में पृथक-पृथक नहीं। ऐसे विचार विमर्श व अनुसंधानों के पश्चात् जो क्रान्ति होगी वह आत्मशक्ति

व न्याय शक्ति परिपूर्ण व स्वार्थपरता से मुक्त हो चिर स्थायी होगी। जो वर्तमान में है वह भविष्य में नष्ट हो जायेगा ऐसा नहीं होगा।

परिवर्तन समयानुसार अवश्य होगा परंतु यह परिवर्तन तथ्यों पर निर्धारित और उनमें निहित नियमानुसार होगा स्वच्छन्द रूप से नहीं। यह नियम गतिहीन नहीं होंगे वरन गतिशील होंगे, क्योंकि समय-समय पर निःस्वार्थी, प्रबुद्ध पुरुष उन पर तर्क-वितर्क व विचार-विमर्श कर उनकी व्याख्या करेंगे। जिसका ध्येय होगा। मनुष्य की आत्म शक्ति, आत्मविश्वास का उत्थान व सुख शान्ति, जो निश्चय से प्रेम व अहिंसा पर आधारित होगी—अखंड वास्तविक आनंद की द्योतक!

विद्यार्थी : पंडित जी एक ओर तो आप कहते हैं कि क्रान्ति चिरस्थायी होगी और दूसरी ओर कि उसमें निरंतर परिवर्तन होता रहेगा। यह बात कुछ ठीक नहीं लगती। इस तथ्य में बड़ी ढील है व गोलमोल है।

पण्डितजी : ऐसा कुछ नहीं है! इसको तुम इस तरह जानो कि जैसे नदी का पानी निरन्तर बहता ही रहता है। उसकी गति रुकती नहीं, यदि यह गति रुक जाये तो जल शुद्ध न रहकर बासी हो सड़ने लगेगा। उसमें दुर्गन्ध आने लगेगी। वह मनुष्य के लिए उपयोगी न रह कर विष समान हो जायेगा। जल तो वही ही है। परन्तु उसकी गति जो उसका स्वभाव है वह रुक गयी है। यहाँ भी ऐसा ही समझो कि मानव के स्वभाव में भी निरन्तर परिणमन होता है। उसके विचारों में जल की तरह गति निहित है जो उसको शुद्धता व शक्ति देने में समर्थ है। गति के अर्थ हैं निरन्तर 'उत्पाद व्यय' और इस ही तथ्य के अन्तर्गत सांसारिक व व्यावहारिक दृष्टि से वस्तुओं व परिस्थितियों में निरन्तर परिवर्तन या 'उत्पाद व्यय' होता रहता है। और यह परिवर्तनशीलता ही वस्तुओं व परिस्थितियों में प्रगति और शुद्धता लाने में समर्थ है।

['उत्पाद व्यय' तथ्य ही समस्त सांसारिक व आध्यात्मिक दर्शन व ज्ञान का मूल आधार है। शाश्वत ! ध्रुव है ! सत्य है ! सो आपने देखा कि क्रान्ति चिरस्थायी होने में व उसमें निरन्तर परिवर्तन में असमानता नहीं है और न विरोधाभास]।

विद्यार्थी : पण्डितजी आपने क्रान्ति के चिरस्थायी होने व उसमें निरन्तर परिवर्तन होने में समानता दिखा एवं उसका ज्ञान करा मुझे दुःख दायी सन्देह से उभारा है। मैं इसका अत्यधिक आभारी हूँ। अब यदि आप इस सन्देह पर कि अभिषेक के समय दूध, दही व घी आदि पदार्थों को प्रतिमा पर ढार उनको व्यर्थ क्यों किया जाय, प्रकाश डालें तो मैं बहुत आभारी होऊँगा।

[पण्डितजी कन्या छात्रा को संबोधित कर कहते हैं।]

पण्डितजी : आपकी तो भगवान बाहुबली की इस विचित्र प्रतिमा पर पूर्ण श्रद्धा है, भक्ति है सो आप ही प्रतिमा व उसके अभिषेक के प्रति इनका सन्देह व शंका को दूर करें।

कन्या छात्रा : देखो भाई ! यह विचित्र प्रतिमा दर्शाती है बाहुबली के सम्पूर्ण दर्शन, ज्ञान व चरित्र को—समदृष्टिता व करुणा जो दीप्यमान है, प्रतिमा पर क्रीड़ा करती कोमल लतायें व जहरीले सर्पों के माध्यम से। उनके चरित्र में भिन्न व शत्रु के बीच समानता आ चुकी है। वे निर्भीक हैं और भय से मुक्त हैं। जहाँ भय नहीं वहाँ जन्म होता है क्षमता, नम्रता, शान्ति व अनुपम आनन्द का, ये आनन्दित भावनाएँ अंकित गर्भित हैं प्रतिमा की मन्द मुस्कान में। उनके नेत्र लगे हैं असीमता व अनन्त की ओर जो समय व अन्तरिक्ष से परे हैं।

एक समय या एक क्षण में दृष्टते हैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, भूत, भविष्यत, वर्तमान—तीनों काल। नेत्र बता रहे हैं उनका असीमित दर्शन व ज्ञान।

विद्यार्थी : ऐसी विचित्रता को प्रदर्शित करने वाला कलाकार भी अद्‌भुत होगा।

कन्या छात्रा : सो तो स्पष्ट ही है! उसका चातुर्य! उसने अपने दर्शन व ज्ञान की अनुभूतियाँ अंकित कर दी हैं इस पाषाण की महान अपूर्व मुद्रा में। उसने मानवता की प्रेरणाओं, आनन्द व मुक्त भाव को प्रतिमा के माध्यम से चिरस्थायी व सार्वभौमिक बनाया है। उसने व्यक्ति की मानवता, आत्मशक्ति व शारीरिक शक्ति एवं प्रतिमा के अंग प्रत्यंग के ओज को कला द्वारा प्रदर्शित किया है।

कलाकार की कल्पना जो उसने प्रतिमा के रूप में प्रस्तुत की है शाश्वत है। इतिहास व समय क्षेत्र की सीमाओं से परे है—जो आज 1,000 वर्ष पश्चात् भी उतनी ही सत्य व प्रामाणिक है, एवं इस प्रकार अनादि व अनन्त है।

अनुपम तथ्यों को दर्शाने वाली, ऐसी अनुपम प्रतिमा का आरक्षण, जीर्णता व क्षय को रोकना अभिषेक द्वारा अत्यन्त उचित व आवश्यक हैं। इस साधन को भक्ति-भावना से जोड़कर अभिषेक का रूप देना अन्तर व वाह्य दोनों का सुन्दर सामंजस्य है।

विद्यार्थी : बहिन! मैं किस प्रकार आपका उपकार प्रगट करूं। आपने मुझे ज्ञान-दान दिया, मैं आपका कितना आभारी व कृतज्ञ हूँ। आपने मेरी दृष्टि खोली—नया दर्शन व ज्ञान देकर। चलो दर्शनों को चलें श्रद्धा के साथ और अन्य यात्रियों की तरह भगवान व अपने में समानता स्थापित करने की भावना से!

पण्डितजी : तथास्तु।

[दोनों विद्यार्थी अन्य यात्रियों के बहाव में सम्मिलित हो जाते हैं, स्तुति करते ऊपर को चढ़ते हैं। स्तुति का स्वर अब ऊंचा है। पण्डितजी अब अति सन्तुष्ट व आनंदित हैं।]

(पर्दा गिरता है)

●●●